IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आदिवासी साहित्य में स्त्री चिंतन के स्वर

रितु कुमारी
शोधार्थी (पीएच.डी.)
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयए अलीगढ़

सारांश

इस शोध का उद्देश्य आदिवासी साहित्य को केंद्र में रखते हुए आदिवासी स्त्रियों द्वारा उत्पन्न रचना संसार जहां उन्होंने अपनी स्वानुभूति व अपने साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, अस्तित्व-संकट, विस्थापन, अस्मिता-बोध, नक्सलबाड़ी कहलाने का दंश, असभ्य व बर्बर आदि विषेशणों पर अपने तरीके से विचार किया है। आदिवासी स्त्री साहित्यकारों ने स्त्री अस्मिता की खोज एवं शोषण के जिन विविध रूपों से उद्घटित किया और उनके खिलाफ हो रहे अन्याय के प्रतिरोध का जो साहित्य रचाए उसकी एक छोटी प्रस्तुति यहाँ उपलब्ध है।

प्रमुख शब्द. आदिवासी साहित्यए स्त्रीए स्वानुभूतिए शोषणए संघर्ष।

अपने ही घर में

अपमानित-पीड़ित-शोषित

शिक्षा और मौलिक अधिकार से विहीन

अपनी पहचान छुपाये

सशंकित और अभिशप्त जीवन जी रहे हम

...

हमने भी दिया है अपना बलिदान

अब हमें और दर किनार नहीं किया जा सकता।

विनोद कुमार विश्वकर्मा की साधारण लफ्जों में बुनी कविता 'अपने ही घर में' कि यह मर्मांतक पंक्तियां आदिवासी जनजीवन की कठोर सच्चाई व्यक्त करती है, जिसे डॉ गोरखनाथ तिवारी ने इस तरह परिभाषित किया है "संपूर्ण मनुष्य का एक विभाग उन लोगों का भी है जो सभ्यता की दौड़ में बहुत पीछे छूट गए हैं। उन्हें आदिवासी कहा जाता है।" इस सभ्यता की दौड़ में पीछे छूटने की खाई को पाटने का पाथेय बना आदिवासी साहित्य।

आदिवासी साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तो निश्चित रुप से आदिवासी जनजातियों में जगा 'आत्मभान' हमारा ध्यान खींचता है। आज भारतीय स्तर पर आदिवासी साहित्य की चर्चा शुरू है। अनेक भारतीय भाषाओं में आदिवासियों की जीवन समस्या, जीवन संघर्ष और शोषण को लेकर साहित्य लिखना आरंभ हुआ है। वास्तव में आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य का गर्भ पुत्र ना होकर सभी भारतीय भाषाओं के बूंद-बूंद खून से बना वह पुत्र है जिसे अपनी ही धरती पर सदियों से सौतेलेपन का व्यवहार झेलने के बाद अपने अधिकारों के लिए खड़ा होना पड़ा। यह साहित्य आदिवासियों की 'जल-जंगल-जमीन' से खदेड़ने की त्रासदी को डंके की चोट पर व्यक्त करता है। तभी तो निर्मला पुतुल लिखती हैं -

"ये वो लोग हैं जो हमारे बिस्तर पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही जमीन पर खड़ा हो पूछते

हमसे हमारी औकात।"

आज आदिवासी अस्तित्व का संकट गहरा रहा है। मनुष्य ने मनुष्य को बहुत सताया है। अनेक गैर आदिवासी रचनाकारों ने सभ्यता, संस्कृति और अर्थव्यवस्था की सजग आलोचक की भाँति पड़ताल की है किन्तु जब आदिवासी स्वयं कलम उठाते हैं तो वह उनकी अपनी स्वानुभूति व अपने साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, अस्तित्व-संकट, विस्थापन, अस्मिता-बोध, नक्सलबाड़ी कहलाने का दंश, असभ्य व बर्बर आदि विषेशणों पर अपने तरीके से विचार करते हैं। चूँकि वह उनका अपना भोगा हुआ यथार्थ होता है।

स्त्रियां ना सिर्फ मनुष्य की वरन पूरे समाज की अर्धांगिनी होती है ऐसे में आदिवासी साहित्य के घेरे में स्त्रियों की भूमिका बहुत ही सशक्त है अतः जब हम आदिवासी साहित्य को देखते हैं तो पाते हैं कि आदिवासी लेखन में स्त्री और उसके अधिकारों के लिए द्वार खोले हैं। आदिवासी स्त्रियों ने अपने हक और अधिकारों के लिए पुरूषों के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है। स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को निडरता के साथ उठाती हैं। अस्तित्व व अस्मिता का संकट यदि है तब उसका विरोध विद्रोह के अलावा दूसरा हो ही क्या सकता है। ग्रेस कुजूर समय की विसंगति को निरखती हुई उस पर व्यंग्य करती हैं- "हे संगी। तानो अपना तरकस/नहीं हुआ है भोथरा अब तक/बिरसा आबा का तीर/मैं बनूंगी एक बार और सिनगी दई।"

(यहाँ उल्लिखित रानी सिनगी दई ओरॉव में महज औरतों की फौज लेकर हमलावरों (मुगलों को) को मुँह की खिलाई थी। यह एक तरह से आजाद जातियों पर साम्राज्यवादियों का हमला था, जिसे उन मर्दानी औरतों ने नाकाम कर दिया था एक बार, दो बार नहीं तीन-तीन बार। उन दागों को कलंक न मानकर सभी ओरॉव औरतों ने सिंगार के रूप में अपना लिया और आज भी वो तीन गोदने करवाती हैं।)

आदिवासी साहित्य में स्त्री विमर्श ग़ैर-आदिवासियों द्वारा चलाए गए स्त्री विमर्श से इस मायने में अलग है कि वे समन्वय की नहीं संघर्ष की बात करते हैं, क्योंकि उनके साथ अन्याय हुआ है। इसलिए ये उस संघर्ष की बात करते हैं जो उनको वर्ण व्यवस्था से मुक्ति देगा, उनको ज्ञान और सत्ता की प्रक्रिया से जोड़ेगा तथा एक बेहतर समाज के निर्माण में मदद करेगा। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, जो पारम्परिक स्त्री साहित्य से आदिवासी साहित्य को अलग करती है।

साहित्य में जहाँ कहीं आदिवासी स्त्री का चित्रण हुआ है वहाँ हम आदिवासी स्त्री को मात्र स्वछन्द यौन की वस्तु, लुटी-पिटी और क्षत-विक्षत रूप में चित्रित किया हुआ ही देखते हैं। इससे आहत होकर वंदना टेटे लिखती है- "भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती हैं। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फ़िल्मों में एकसिरे से ग़ायब हैं।"2

आदिवासी स्त्री साहित्य आदिवासी स्त्री द्वारा भोगे हुए खुरदरे यथार्थ की सच्चाई को बिना किसी लाग लपेट के बयान करनेवाला साहित्य है। जब आदिवासी समाज में स्त्रियों की बात होती है तो ऐसा माना जाता है कि आदिवासी स्त्रियाँ अन्य समाज की तुलना में अधिक स्वतंत्र होती हैं। लेकिन बिटिया मुर्मू ने लिखा है कि- "भारत की संस्कृति में महिलाओं की जो स्थिति है, आदिवासी संस्कृति में महिलाओं की स्थिति उससे बहुत भिन्न नहीं है। आम धारणा है कि आदिवासी महिलाएँ अधिकार संपन्न तथा बराबर की हकदार हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है।"3

रमणिका गुप्ता ने इस तर्क के बारे में लिखा है कि- "आदिवासियों की जमीन दारू के बदले पुरुष समाज ही गैर आदिवासियों को हस्तान्तरित कर देते आया है। इसलिए उनका यह तर्क कि स्त्री को सम्पत्ति में हक मिल जाने से स्त्रियों द्वारा गैर-आदिवासियों के साथ विवाह करने पर जमीन का हस्तांतरण हो जाएगा गलत है। इस तर्क की काट तो कानून में छोटा सा संशोधन- कि स्त्री द्वारा गैर-आदिवासी से शादी करने के बाद जमीन की हकदार आदिवासी स्त्री और उसके बच्चे ही होंगे उसका पति नहीं, ला कर की जा सकती है।"4

आदिवासी स्त्री जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, निर्मला पुतुल, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना, सरिता बड़ाइक, वन्दना टेटे, रोज केरकेट्टा, इरोम शर्मिला, जनार्दन गोंड, ऑड्रे लोर्ड आदि साहित्यकारों ने आवाज़ दी है। इन साहित्यकारों ने अपनी कविताओं और साहित्य के माध्यम से अपना भोगा हुआ यथार्थ और साथ ही अपने समाज के सामाजिक, वैयक्तिक जीवन-संघर्ष की समस्याओं को व्यक्त किया है। आदिवासी कविताओं में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन-संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से देखी जाती हैं। आदिवासी स्त्रियों ने पहले तो अपने हक़ और

अधिकार के लिए पुरुष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया और अब अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए न केवल समाज में बल्कि अपने घर में ही संघर्ष करने को मजबूर हैं।

स्त्रियों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण पर आक्षेप करते हुए निर्मला पुतुल ने 'हमें चाहिए बेख़ौफ़ आज़ादी' कृति में लिखा है-

"तन के भूगोल से परे

एक स्त्री के

मन की गाँठें खोलकर

कभी पढ़ा है तुमने

उसके भीतर का खौलता इतिहास....?

अगर नहीं

तो जानते क्या हो तुम

रसोई और बिस्तर के

गणित से परे

एक स्त्री के बारे में....?"5

मीणा और भील जनजातियों में स्त्रियों पर 'डाकन' होने का आरोप लगा कर मार डालने की कुप्रथा व्याप्त है, 'अंधविश्वास' एवं 'एक बित्ता ज़मीन' कहानी वर्तमान में आदिवासी समाज में व्याप्त डायन समस्या को सामने रखती है। दरअसल स्त्रियों का शोषण प्रत्येक समाज में होता आया है, कहीं उन्हें दैवीय गुणों से युक्त मानकर शोषित किया गया है तो कहीं सदाचारणी के रूप में किन्तु आदिवासी समाजों में स्त्रियों की दशा कितनी दारुण है। उन्हें अपनी पहचान तक से वंचित कर दिया गया है। वह कभी आदिवासी पहचान के साथ जीती हैं तो कभी ईसाई हो जाती हैं तो कभी पंजाबी और कभी फिर आदिवासी, इस पूरे भटकाव में जिंदगी कब उनके हाथ से निकल जाती है, कुछ पता ही नहीं चल पाता है। इसके साथ ही वे अपनी आस्मिता के लिए संघर्षरत् रहती हैं।

स्त्री चिंतन व आदिवासी विमर्श पर लेखन करने वाली समाज सुधारक लेखिका रमणिका गुप्ता स्त्री अस्मिता को पर्यावरण के माध्यम से समझने की मुहिम पर बल देती हैं- ''ओ देवदार तुम्हारे पत्ते/जब भर देते हैं अँधेरे में गंध/सरसराने लगती है ध्वनि तो/सुर में सुर मिलाकर/ सारा का सारा जंगल लगता है गाने/ दूर-दूर तक पसर जाता है राह का सन्नाटा/डरने लगता है मन/क्या तुम्हें याद आता है/ सदियों से पहले का दुर्दम दमन?''6

आदिवासी स्त्री का संघर्ष सीधे तौर पर सिर्फ पुरुष वर्ग या वर्चस्ववादी सत्ता से नहीं है वरन उनका संघर्ष पूँजीपति व सामन्त वर्ग से भी है जिन्होंने उन्हें उनकी जमीन से अलग किया है। वंदना टेटे लिखती है- "विस्थापन, पलायन और औद्योगिकरण की सबसे ज़्यादा मार आदिवासी महिलाओं को ही भोगनी पड़ी है। इन जगहों पर चाहे वह आदिवासी समाज की महिला हो या ग़ैर-आदिवासी समाज की, दिहाड़ी मजदूर 'रेजा' हो या फिर किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी विभाग में कार्यरत मध्यवर्गीय महिला, दोनों ही समान रूप से उत्पीड़ित हैं।"7

आदिवासी स्त्रियों का यह संघर्ष आदिवासी जनजीवन पर लिखे गए उपन्यास के पात्रों में भी पूर्ण सशक्तता के साथ झलकता है। फिर चाहे वह संजीव के 'धार' उपन्यास की नायिका 'मैना' हो या शानी के 'कस्तूरी' उपन्यास की नायिका 'धानमा'।

जब मैना कहती है - 'काहे मरद औरत को छोड़ सकता है और औरत मरद को नहीं छोड़ सकता' तो आज भी संकीर्ण सोच रखने वाले पुरुषों के गाल गुस्से से लाल हो जाते हैं। मैना मर्दवादी व्यवस्था को तोड़ती एक ऐसी आदिवासी नारी है जिसमें स्त्री सुलभ सात्विकताएं भी हैं और अन्यायी, अत्याचारी समाज व्यवस्था और भोगप्रधान पुरुषवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोह भी कूट कूट कर भरा है। जन खदान को पाटने के लिए जब मैना बुलडोजर के आगे खड़ी हो जाती है और बुलडोजर जिंदा मैना को रौंदता चला गया तो फिर आगे मैना उभरती है, अगल-बगल भी वही नजर आती है जैसे एक मैना की कुर्बानी ने कई मैना को जन्म दे दिया।

रोज केरकट्टा लिखती हैं -

''डर को बुनो मत न बांटो/डर रहा हो जहाँ छील दो/जड़ से उखाड़ो/आग में झोंक दो/पास डर को न फटकने दो।''8

इसी डर को तोड़कर सरिता बड़ाइक जी 'मुझे भी कुछ कहना है' कविता में स्त्री के अस्तित्व का संदेश अपने प्रियवर को देती हैं। एक आदिवासी स्त्री के चूल्हे से लेकर बिस्तर तक के जीवन को वह नकारती हैं-

"चूल्हे बिस्तर की परिधि में

मुझे नहीं है रहना

गऊ चाल में चलकर नहीं है थकना

मन में भरी है कविता

मंज़ूर नहीं है थमना

हे प्रियवर... " 9

आदिवासी स्त्रियाँ दर्द सहने की आदी है उनका जीवन कठोर संघर्ष की गाथाओं से भरा पड़ा है किन्तु मुक्ति के लिए उनका मन भी बेचैन है। वे नुमाईश की वस्तु नहीं हैं इनकी दृष्टि अब उन तथाकथित सभ्य लोगों को पहचानने लगी है जो आदिवासी औरतों को सिर्फ वस्तु मानते आए हैं और आदिवासी समाज को सस्ता मज़दूर बनाकर उनकी संस्कृति, जंगल तथा ज़मीन को बड़ी ही चतुराई से हथिया कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर कर देते हैं।

आदिवासी लेखन के द्वारा स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों के लिए द्वार खोले गए हैं। आदिवासी साहित्य मुख्यधारा की संस्कृति के दायरे से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, संघर्ष, इतिहास को एक स्तर से ऊपर उठाने वाला साहित्य है। इन साहित्यकारों ने आदिवासियों के उन प्रश्नों की तरफ़ ध्यान देने वाले साहित्य का निर्माण किया है, जो आदिवासियों में प्रेरणा, जागरुकता, अपने हक़ के लिए लड़ने की शक्ति दे सके। आदिवासी स्त्री ने अपनी अंधश्रद्धा, परम्पराओं, रूढ़ियों, चुल्हा और बच्चों तक सीमित न रहने की कोशिश की है। ये साहित्य पुरुषों की स्त्री विरोधी मानसिकता को बदलने में समर्थ है।

आदिवासी साहित्य स्त्री अस्मिता की खोज एवं शोषण के विविध रूपों से उद्घटित और उनके खिलाफ हो रहे अन्याय के प्रतिरोध का साहित्य है। आदिवासी स्त्री संवेदना पीड़ित और स्वतंत्रता की तलाश में व्याकुल है। भले ही भारतीय संविधान में जनजातीय महिलाओं को प्रचुर स्थान मिला है किन्तु उनकी स्थिति विकसित समाज से भिन्न है। आदिवासी स्त्रियाँ जिस जंगल पहाड या दुर्गम प्रदेष में रहती हैं वे वहां की मालकिन हैं लेकिन आज विकास के नाम पर विस्थापन एवं शोषण की जिंदगी जीने को अभिशप्त हैं। आदिवासी साहित्य स्त्री अस्मिता की रक्षा तथा समाज में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल देती है क्योंकि आदिवासी स्त्रियों को विश्वास है अपने पर। अंततः ग्रेस कुजूर के शब्दों में -

"....देखो कलम की धार

तुम्हारे लिए

हां तुम्हारे लिए

कलम मौसम बदलेगी

कलम मौसम बदलेगी।"

संदर्भ ग्रंथ -

1. आदिवासी साहित्य विविध आयाम - संपादक डॉ रमेश संभाजी कुरे,पृष्ठ-210

2. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), संस्करण : 2013, पृष्ठ 72

3.संपा. रमणिका गुप्ता: 'युद्धरत आम आदमी', पूर्णांक 80, दिसम्बर-2005,पृ. 90

4..आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी- सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,संस्करण-2008. पृष्ठ सं-98

5. सं. कविता कृष्णन, जुलियन विगो, रणेंद्र, सविता सिंह : हमें चाहिए बेख़ौफ़ आजादी, प्रकाशक: सांस्कृतिक संकुल जन संस्कृति मंच, बैक कवर पेज

6 सं. फारवर्ड पत्रिका, पृ.सं. 62, मई 2015

7. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), संस्करण : 2013, पृष्ठ 75

8.हरिराम मीणा - सं. समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ सं. 91

9. नन्हें सपनों का सुख- सरिता बड़ाइक, प्रका.रमणिका फाउंडेशन, संस्करण-2013 पृष्ठ सं.108